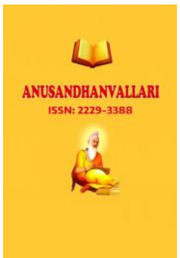

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

अस्पृश्यता, सफाई कामगार व संवैधानिक प्रावधान का निहितार्थ

डॉ. सुमित उज्जैनवाल
शोधार्थी

राजनीतिक विज्ञान विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

Publication Date: 15 January 2025

क्या सरकार ने इस बात को ध्यान में रखा है कि मेहतरों का वेतन इस तरह तय किया जाए कि जातिगत भावना समाप्त हो सके और ऊँची जातियों के लोग भी इस काम को करने के लिए आगे आ सकें।

- डॉ० राम मनोहर लोहिया

5 जुलाई 1967

लोकसभा में एक बहस के दौरान

भारतीय लोकतंत्र में यह बात तो तय है कि जब हाशिये पर पड़े लोग अपने अस्तित्व तथा सम्मान के लिए खुद हंगामा - संघर्ष नहीं करते, उनकी सुध लेने उनके दरवाजे तक कोई नहीं जाता। सफाई कामगारों (अपमार्जकों) ने जब आवाज बुलंद की, टोकरियाँ जलायी, यात्राएँ निकाली, तब ऊपर के हलकों में हलचल होनी शुरू हुई।

चूँकि सफाई कामगारों एवं अपमार्जकों की मुक्ति के सवाल ने ही एक बड़े आंदोलन को दिशा प्रदान की जो आगे चलकर सफाई कर्मचारी आन्दोलन (S.K.A.) के नाम से जाना गया। यह आलेख भारतीय संविधान में दिये गये अनुच्छेद 17 के प्रावधानों (विशेषकर सिविल राईट्स अधिनियम 1955 अनुच्छेद 21, अनुच्छेद 24 तथा अनुच्छेद 47 राज्य के नीति निर्देशन सिद्धान्तों की व्यवहारिक जाँच तो करता ही है। साथ-साथ सफाई कर्मचारी आन्दोलन की इन सभी प्रावधानों पर कैसी व्याख्या है उसकी भी व्यवहारिक जाँच करता है। इसके अनुसार मैला

उन्मूलन कानून (जो 5 जून 1993 को पारित हुआ) पर राजनीतक पार्टियों की झूठी तलवदारी की राजनीति का भी वर्णन किया है।

ज्ञान-विज्ञान का नारा देने वाले देश में विकास का स्वयं से ही विरोधाभा होना, शायद दुनिया में अपवाद ही होगा। एक तरफ अंतरिक्ष को अपने कदमों में नापने के बुलंद हौंसले है तो वही दूसरी तरफ दूसरों का मल नरक की कुंड की सफाई करती मानव जाति । संवेदनशील मानसिकात और नृशंस अत्याचार की यह मौन मिसाल सरकारी कागजों में दंडनीय अपराध है। यह बात दीगर है कि सरकार के ही महकमे इस घृणित कृत्य को बकायदा जायज रूप देते है। नृशंसता यहाँ से कही आगे तक है। समाज के सर्वाधिक उपेक्षित व कमजोर तबके के उत्थान के लिए बनाये गये महकमे खुद ही सरकारी उपेक्षा से आहत रहे है ।[1]

सांविधानिक प्रावधान

संविधान में अस्पृश्यता व अनुसूचित जाति से संबंधित प्रावधान निम्नलिखित हैं-

" अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। 'अस्पृश्यता' से ऊपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा । "

संसद को यह प्राधिकार दिया गया है कि वह विधि द्वारा इस अपराध के लिए दंड विहित करे (अनुच्छेद 35)। इस शक्ति के प्रयोग से संसद ने अस्पृश्या (अपराध) अधिनियम, 1955 अधिनियम किया था।[2] इसका संशोधन और पुनः नामकरण होकर अब यह (1976) से सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 हो गया है।

यह सर्वविदित है कि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्नता और विविधता के बावजूद सम्पूर्ण देश में मैला ढोने वालों को अछूत बताया गया है और अस्पृश्यता का जहर घोला गया है। हट्टन (1981: 196) की निम्नलिखित टिप्पणी से स्थिति पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है। "अतः यह निर्णय करने के लिए कि किन-किन जातियों को अछूत माना जाए, यह आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य

[1] रमेश, वाल्मीकि (2001), उत्तर प्रदेश जहाँ आज भी मैला प्रथा जारी है (सम्पा.) प्रेम कपाड़िया, डॉ. प्रकाश लुईस, नयी सदी भी तोड़ नहीं पायी उत्तर प्रदेश में अछूतपन को, भारतीय सामाजिक संस्थान, नई दिल्ली।

[2] The Protection of Civil Rights Act, 1955.

इस समस्या का समाधान स्वयं करे और उनकी सूची भी स्वयं तैयार करे। साधारण यह कहना संभव नहीं है कि अमुख-अमुख जातियाँ हिन्दू समाज में बहिर्जाति है (Out Caste) और फिर इस मत को सम्पूर्ण भारत में लागू करना भी सम्भव नहीं है। कुछ जातियों, जैसे डोम और भंगियों के मामले में ऐसा सम्भव हो सकता है, परन्तु ऐसा नहीं है कि जो जाति भारत के किसी एक भाग में दलित समझी जाती है, उसे सभी क्षेत्रों में दलित समझा जाए । "

हट्टन की इस टिप्पणी से ज्ञात होता है कि सफाईकर्मी वर्ग परम्परागत रूप से मैला ढोने के व्यवसाय से जुड़ा हुआ है वह समुदाय है जिसे सम्पूर्ण भारत में अछूत समझा जाता है। सफाई करने वालों की जाति ने सदैव रूढिग्रस्त भारतीय समाज में बहुत सी सामाजिक पाबन्दियाँ झेली है। ये सामाजिक पाबन्दियाँ अन्य क्षेत्रों में इनके अलावा अन्य अछूत जातियों पर भी पाई गई है।

हालाँकि अधिनियम 1955 सिविल राईट में अस्पृश्यता के सम्बन्ध में प्रावधान शामिल किये गये। परन्तु इस अधिनियम का प्रतिविषय 1976 में और बढ़ा दिया गया है। अस्पृश्यता के अपराध के अन्तर्गत निम्नलिखित भी रूख दिए गए है-

- अनुसूचित जाति के किसी सदस्य का अस्पृश्यता के आधार पर अपमान (Humilation) करना।
- प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अस्पृश्यता के आधार पर अस्पृश्यता का उपदेश देना।
- इतिहास, दर्शन या धर्म के आधार पर जाति-व्यवस्था की परम्परा के आधार पर अस्पृश्यता को न्यायोचित ठहरना।[3]

दाण्डिक अभिंशस्ति को बढ़ाकर यह उपबन्ध किया गया है कि (क) पश्चात्वर्ती दोष सिद्धि के लिए दण्ड एक से दो वर्ष तक का कारावास हो सकेगा। (ख) अस्पृश्यता के अपराध के लिए दोषी सिद्ध व्यक्ति संघ या राज्य विधानमण्डल के लिए निर्वाचन के लिए निरर्हित होगा। यदि अनुसूचित जाति का कोई सदस्य किसी निर्योग्यता या विभेद का शिकार होता है तो न्यायालय, जब तक प्रतिकूल साबित न किया जाए तब तक, यह उपधारणा करेगा कि ऐसा कार्य अस्पृश्यता

[3] Information as given above based on Lok Sabha Secretariat Parliamentary Library and Reference, Research, Documentation and Information Service Reference Note No. 18 Aug. 2013.

के आधार पर किया गया है।[4] दूसरे शब्दों में ऐसे मामलों में इस अधिनियम के अधीन अपराध किए जाने की कानूनी उपधारणा होगी।

अनुच्छेद 21: दैहिक स्वतंत्रता

" किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं। "

इसका यह अर्थ है कि कार्यपालिका का कोई सदस्य किसी नागरिक की स्वतंत्रता में तभी हस्तक्षेप कर सकेगां जब वह अपनी कार्यवाही के समर्थन में विधि का कोई उपबंध दिखा सके। संक्षेप में किसी व्यक्ति पर कोई ऐसा शारीरिक प्रपीड़न नहीं किया जिसका विधिक औचित्य न हो। जब राज्य (State) या उसका कोई अभिकर्ता किसी व्यक्ति को उसकी दैहिक स्वतंत्रता से वंचित करता है तो इस कार्यवाही का औचित्य तभी हो सकता है जब उस कार्यवाही के समर्थन में कोई विधि हो।[5]

प्रो. मनोरंजन मोहंती का तर्क सही है कि अमुमन न्यायालय द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याख्या होते हुए उसमें गरिमा के साथ जीवनयापन (Right to Live with Dignity) को शामिल करने पर बल दिया जाता रहा है। आगे बताते है कि प्रासंगिक समय में हस्तचालित सफाई कामगारों का रोजगार एवं शुष्क शौचालय निर्माण (निषेध) अधिनियम 1993 के अन्तर्गत सिर पर मैला ढोना अथवा इसका हस्तचालित संचालन, शुल्क शौचालयों का निर्माण तथा सफाई कामगारों द्वारा इसकी सफाई को प्रतिबंधित कर दिया गया है।[6] लेकिन आज भी निजीधरों में सीवरों की सफाई तथा रेलवे में पीने के पानी के बने पीयाओ का जुड़ाव सीधे सीवरों या जल निकासियों से जुड़ा है इन्हें हाथों से साफ करना पड़ता है। इस प्रकार के स्वच्छता प्रबंधन को मध्यनजर रखते हुए कहा जा सकता है कि 2013 में आये मैला उन्मूलन कानून का उल्लंघन है।

[4] डॉ. दुर्गा दास, बसु (1994), भारत का संविधान - एक परिचय, वाधना एण्ड कम्पनी ।
[5] वही ।
[6] Note M. Mohanty (2013), Weapon of the Oppressed % An Inventory of People's Rights in India.

ग्यारह साल तक देश की सर्वोच्च न्यायालय में चक्कर काटे। इस दौरान देश के दो प्रधान न्यायाधीशों समेत शीर्षस्थ 16 जजों के सामने अपनी व्यथा-कथा रखने, सरकारों के झूठ को बेनकाब करने वाले अकाट्य सबूत पेश किये। फोटो के साथ दस्तावेज पेश किये कि देश के अधिकांश राज्य में सिर पर मैला ढोने का गैर कानूनी और घोर अमानवीय काम हो रहा है। सरकार ने गैर कानूनी प्रथा को समाप्त करने में देश की तमाम सरकारों की नाकामी पर कोई कड़ा फैसला देने की बजाय, कमोबेश हाथ खड़े करते हुए कहा कि न्याय की उम्मीद लगाये बैठे मैला ढोने वालों को 23-23 राज्यों के न्यायालयों के दरवाजे खटखटाकर गुहार लगानी चाहिए।

अब बात (5 जून 1993) के इस कानून के ऐसे प्रावधान के बारे में जो इस लाये जाने के मकसद के ही उलट था। सबसे पहले तो इस कानून में मैला ढोने वालों को परिभाषा में खाली शुष्क शौचालयों को साफ करने वालों को ही शामिल किया गया, जबकि रेलवे ट्रैक, मैनहोल, सीवरेज लाईन, सेप्टिक टैंक, खुले शौचालयों इत्यादि में काम करने वालों को इसके दायरे में ही नहीं रखा गया, जबकि ये सारे काम भी उतने ही घृणित अमानवीय और कमोबेश एक ही सरीखे के है।[7]

इतने पर भी बार-बार सरकारियता (Governmentality) के ज्ञान पर आधारित एवर्नमेंट रिपोर्टस ने सफाई कर्मचारियों और मैला ढोने वालों के बीच अन्तर करके अपने अनुसार परिभाषाएँ भी अभिव्यक्त करी। ताकि सरकार के रोज़मर्रा के कामकाज का संचालन हो सके। इन सरकारी रिपोर्ट्स के अनुसार सफाई कर्मचारियों को उस श्रेणी में रखा जाता है। जो स्वच्छता, साफ सफाई के व्यवसाय में या तो म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन का हिस्सा है। या तो फिर निजी ऑफसिस, संगठनों में कार्यरत है। वही मैला ढोने वाले वह लोग है जो किसी निजी प्रौद्योगिकीकरण (Authority) या फिर सार्वजनिक एवं सरकारी एजेंसी द्वारा जबरन मानव मल को उठाने पर मजबूर है।[8]

अधिकांश मामलों में म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन विभाग में व्यवहारिक तौर पर बंद सीवरों को बंद होने पर स्वच्छता या साफ सफाई के काम में लगे मुलाजिमों से ही साफ करवाया जाता है

[7] भाषा, सिंह (2012), बंद दरवाजों में फँसायी टाँग, अदृश्य भारत, पेंगुइन बुक्स इंडिया ।
[8] Manual Scavengers : Welfare and Rehabilitation Lok Sabha Secretariat Parliamentary Library and Reference, Research, Documentation and Information Service, August 2013.

जिसको साफ करते समय मानव मल से गंदे होने के अधिकाधिक अवसर शेष बचे रहते है। इस तरह से मैला ढोने वालों के एक बड़े हिस्से को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में न्यायालय द्वारा दी गई अस्मिता में गरिमा के साथ जीवनयापन का हक भी प्राप्त होने से वंचित रखा जाता है।

अनुच्छेद 23: शोषण के विरुद्ध अधिकार के अनुषंग के रूप में समाज के दुर्बल वर्गों के दुराचारी व्यक्तियों द्वारा या राज्य द्वारा शोषण रोकने के लिए कुछ उपबंध हैं

" (1) मानव का दुर्व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात् श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है और उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।

(2) इस अनुच्छेद की कोई बात, राज्य को सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अनिवार्य सेवा अधिरोपित करने से निवारित नहीं करेगी, मूलवंश, जातिया वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर काई विभेद नहीं करेगा।

प्राचीनकाल की दास प्रथा आजकल राज्यों की समस्या नहीं है किन्तु उसका नया रूप जिसे भारत के संविधान में " शोषण " शीर्ष के अधीन रखा गया है मानवीय स्वतंत्रता और सभ्यता के लिए चुनौती है।[9]

मैला ढोने की प्रथा के प्रारम्भिक अध्ययन से ही इस पर वाद-विवाद बना रहा है जहाँ एक तरफ 'जाति' व्यवस्था का अध्ययन करने वालों का कहना है कि कुछ लोग इसका रिश्ता देश के मुगलों के आगमन से जोड़कर इस कुप्रथा का ठीकरा उनके सिर पर फोड़ने की कोशिश करते हुए इतिहास की भगवा व्याख्या को आगे बढ़ाने की काशिश करते है, लेकिन वह भूल जाते है कि देश की जाति-व्यवस्था

हिन्दुत्ववादी विचारधारा की देन है। मैला ढोने का सीधा रिश्ता इसी वर्बर व्यवस्था से है। वही अन्यों का मानना है कि जो प्राचीनकाल से कायम वर्णन व्यवस्था में विश्वास रखकर मैला ढोने की शुरूआत वही से मानते है वह यह भूल जाते है कि सफाई कामगार सिर्फ एक जातीय

[9] डॉ. दुर्गा, दास बसु (1994), भारत का संविधान, एक परिचय, वाधवा एण्ड कम्पनी।

समूह ही नहीं बल्कि व्यवसायिक समूह है (Occupational Group) इस करके प्राचीन काल में वह मैला ढोने का काम सिर्फ अछूत के रूप में ही नहीं बल्कि दास के रूप में किया करते थे।[10]

बहरहाल मुद्दा चाहे जाति के अस्तित्व का हो या फिर वर्ग (दास के रूप में) दोनों ही मामलों में सफाई कामगारों को किसी दास की तरह ही शोषित किया जाता रहा है। कुछ नगरों में सफाई कर्मियों को सुविधा दी गई है, जो पर्याप्त नहीं है, सीवर लाईनों में सुधार की जरूरत है। इनकी सफाई के समय अनेक कर्मचारी दम घुटने से मर जाते है जिनके परिवार को उचित मुआवजा नहीं मिलता है, न ही म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन उनके परिवार के प्रति कोई जिम्मेवारी का निर्वाह नहीं करता है।[11]

रही सही कसर ठेकेदारी प्रथा ने पूरी कर दी है। ठेकेदारी प्रथा ने सिर्फ इस समाज के पेट पर ही लात नहीं मारी, पीठ पर भी वार किया है। जिसे प्रशासनिक अधिकारी और संसद में बैठे जन प्रतिनिधि भी नहीं देख रहे है। इस प्रथा के कारण इस समाज में शिक्षा की जो चिंगारी दिखाई दी थी, वह बुझने के कगार पर है।

जहाँ तक इस संदर्भ में सफाई कामगारों के मुक्ति आन्दोलन का प्रश्न है। तब यहाँ पर सफाई कर्मचारी मजदूर आन्दोलन का ज़िक किया जा सकता हैं जिसने 11 साल तक देश की सर्वोच्च अदालत में चक्कर काटे। सफाई कर्मचारी आन्दोलन क्या हैं? कब कैसे शुरू हुआ? सफाई कर्मचारी आन्दोलन कोई संस्था नहीं है बल्कि एकमंच है जो लोग जाति आधारित समाज के बंधन से मुक्त होना चाहते है। समाज में एक समुदाय द्वार मैला ढोने के कारण इस अमानवीयता को जड़ से समाप्त करने के लिए कर्नाटक के आक्रोशित युवाओं द्वारा यह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसका नतृत्व बेजवाड़ा विल्सन ने किया।

सफाई कर्मचारी आन्दोलन ने आन्ध्र-प्रदेश, तमिलनाडू, कर्नाटक, दिल्ली में मैला प्रथा के विरूद्ध संघर्ष प्रारंम्भ किया। सफाई कर्मचारी आन्दोलन को समान रूप से 1989 के उपरान्त प्रारम्भ की गई ग्रास रूट पॉलिटिक्स के समान ही समझा जा सकता है। अशीष घोष के अनुसार यह

[10] Ram, Gopal Singh (2004) : Social Party for Sustainable Development of Scavenging Community, Restoration of Human Rights and Dignity to Dalit, Manak Publication

[11] ओम प्रकाश बाल्मीकि (2013), 'मगर शर्म उनको आती नहीं' , कदम साहित्य एवं जनचेतना की त्रैमासिक पत्रिका, पृ. 4, दिल्ली ।

ज़मीनी जनवादी आन्दोलन स्वयं में नव सामाजिक सत्ता को हासिल करने के रूप एक अलग सामाजिक जमीन निर्मित करते हुए नजर आये जिनका एक अहम सवाल सक्रियतावादियों की ओर से बार-बार इस रूप में आता हुआ नजर आया कि आखिर यह विकास किसके लिए है? उनका मानना है कि तमाम सक्रियतावादी का रूझान इस तर्क की तरफ झुलता हुआ नजर आया कि भारतीय राज्य शोषणकारी प्रवृत्ति के साथ-साथ अंहिसक प्रवृत्ति का है। जिन्होंने पूरे बल के साथ राज्य की नीतियों तथा सरकारी तंत्र का विरोध प्रारम्भ किया। इतना ही नहीं अब मानवाधिकार जैसे मुद्दो को अन्तराष्ट्रीयकरण प्रारम्भ हुआ। समान रूप से बेज बाड़ा विल्सन के द्वारा प्रारम्भ सफाई कर्मचारी आन्दोलन में इसके अवशेष नजर आने है।[12] इस दौरान देश के दो प्रधान न्यायधीशों समेत शीर्षस्थ 16 जजों के सामने अपनी व्यथा कथा रखने, सरकारों के झूठ को बेनकाब करने वाले अकाटय सबूत पेश किये। फोटों के साथ ये दस्तावेज पेश किये कि देश के 14 राज्यों में सिर पर मैला ढोने का गैर-कानूनी और घोर अमानवीय काम हो रहा है।[13]

लेकिन नतीजा क्या निकला, सिफर! इतना कुछ सामने रख देने के बाद भी सुप्रीम कोर्ट ने इस गैर-कानूनी प्रथा को खत्म करने में देश की तमाम नाकामी पर कोइ कडा फैसला देने या लचार सरकारी मशीनरी को लताडने, या कानून का उल्लंघन करने वालों के खिलाफ कोई कार्यवाही करने की बजाय, कमोबेश हाथ खड़े करते हुए कहा कि न्याय की उम्मीद लगाये बैठे मैला ढोने वालों को 23-23 राज्यों के उच्च न्यायालयों के दरवाजे खटखटा कर गुहार लगानी चाहिए। जबकि उम्मीद क्या थी? कि कोर्ट सीधे-सीधे इस प्रथा को गैरकानूनी करार दे कर सरकार को इसे तुरन्त बन्द करने और इस काम में लगे लोगों का पुर्नवास करने का खुद एक-दो लाइन का फैसला देती। इसकी बजाय उसने गेंद उच्च न्यायलयों के पाले में डाल दी।[14]

आशीष नंदी का कहना सही है कि राष्ट्र-राज्य की आधुनिक अवधारणा ने अब सार्वजनिक जीवन पर अपनी चौधराहट कायम कर ली है। चालीस वर्षों में इसके साथ अनगिनत निहित

---

[12] Ashish, Ghosh (1995), 'Towards participative knowledge. in (eds) Neera Chadhoke and Ashish Ghosh Grassroots Movement and Social Change] DCRC

[13] बेजवाड़ा, विल्लन (2013), स्वच्छकार समाज की परिवर्तन यात्रा, (सम्पादक), डॉ. रणजीत, का जंजाल, मानवीय समाज प्रकाशन तथा सफाई कर्मचारी आन्दोलन एक्शन 2010, भारत से मैला प्रथा उन्मूलन की रणनीति ।

[14] "A case for human dignity" front line, 17 June 2005.

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

स्वार्थ बँध गये है। आज का लगभग पूरा भारत राष्ट्र राज्य को ही राज्य की एक मात्र वैध और संभव अवधारणा मान बैठा है। इसका महत्व इतना ज्यादा बढ़ गया है कि इसने भारतीय सभ्यता के अन्य सभी पहलुओं के ऊपर सर्वांगीण प्राथमिकता हासिल कर ली है। वह इतना क्षमतावान हो चुका है कि राज्य की आवश्यकताओं के साथ टकराने वाली भारतीय समाज की सभी माँगों का प्रतिरोध कर सकता है।[15]

बहरहाल, सुप्रीम कोर्ट के 12 जनवरी 2011 को आये इस ताजा निर्देश के बाद अब यह मामला 22 राज्यों के उच्च न्यायलयों से यह भी अनुरोध किया है कि वे सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस मुद्दे पर बीच-बीच में जारी किये गये निर्देशों को ध्यान में रखे ।

कोर्ट का कहना था कि इस याचिका को परख कर उसने पाया कि इसमें कई तरह के अनुरोध शामिल है। कोर्ट एक दशक से मामले की सुनवाई कर रही है और कई विस्तृत दिशा-निर्देशन दे चुकी है। अब इन्हे लागू कराने के लिए अलग-अलग राज्यों के हाइकोर्ट के पास जाना चाहिए। चिन्हित करना होगा जहाँ पर यह प्रथा चल रही है इसके साथ ही इसे लागू करने के लिए उसे इन इलाकों को कम-से-कम नब्बे दिन का समय भी देना होगा। इतना होता तो बात थी। प्रथा को पूरी तरह समाप्त करने के उलट अनुच्छेद 3 (2) में स्थानीय अधिकारियों को इस कानून से बचने की सारी गुंजाईशे भी खुदही प्रदान कर दी गई। अनुच्छेद 3(2) (3) में इस कानून के लागू होने की शर्त यह दी गई है कि उस इलाके में जल चालित शौचालयो के लिए पानी की पर्याप्त आपूर्ति होनी चाहिए। इस तरह अनुच्छेद 3 (2) में पर्यावरण की रक्षा और जन स्वास्थ्य के बचाव और सुधार के नाम पर कानून न लागू करने की छूट दे दी गयी। यानी कोई भी स्थानीय अधिकारी चाहे तो अपने इलाके में पानी की कमी या पर्यावरण और लोगों की सेहत को संकट के नाम पर यह कानून लागू करने से माना कर सकता है।

समूचा अनुच्छेद 3 (2) इस कानून को बनाने की मूल भावना के ही खिलाफ प्रतीत होता है।[16] और अगर इससे आपकों हैरत होती तो जरा सब्र कीजिए। इतने चोर रास्तों से काम न चलता हो तो अधिनियम के अनुच्छेद 4 में तो राज्य सरकारों को खुली छूट दे दी गयी है कि वे एक

[15] नंदी, आशीष (2002), नयी राजनीतिक संस्कृतिक, (सम्पा.), अभय कुमार दुबे, 'लोकतंत्र के सात अध्याय' , नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन ।

[16] इसका विस्तार से उल्लेख पीछे परिशिष्ट में उल्लेखित है (5 जून 1993 का कानून)

अधिसूचना जारी करके किसी भी इमारत या वर्ग (श्रेणी) को इस कानून के प्रावधानों से छूट दे सकती है। इसके लिए कोई कारण हो या न हो, बस राज्य सरकार की मर्जी होनी चाहिए । जब हर तरह से छूट ही दे दी जानी है तो भला कानून का मतलब क्या?

कानून बनाने वालों की मंशा साफ लगती है कि उनके अनुरूप बना है और उसके बाद कुछ बचाखुचा मैला ढोने वालों को मिल जाये तो ठीक। यह बहुत कुछ वैसी ही मानसिकता है जैसी ऐतिहासिक काल से दलित वर्गों को सारी सुविधाओं से महरूम रखकर गाँव या कस्बे से बाहर धकेलने की रही है। बेजवाड़ा विल्सन का कहना है कि पूछा जाना चाहिए कि आखिर संविधान की प्रस्तावना में जिस मानव सम्मान की गारंटी दी गयी है, उसमें कोई छूट क्यों दी जानी चाहिए? 1993 के कानून में पुनर्वास तक के बारे में कह दिया गया है कि जहाँ तक मुमकिन है, किया जाये, यानी उसमें कोई भी बन्दिश नहीं। एक तो कानून इस तरह से लाचार बनाया गया, ऊपर से उसे लागू करने वाला प्रशासन कितना काहिल रहा, यह कई बार व्यवस्था में आपका विश्वास डिगा देता है।[17]

अब दण्ड की बात। अधिनियम के अध्याय 4, अनुच्छेद 14, में दण्ड की बात तो कही है[18], लेकिन यही स्पष्ट नहीं है कि दण्डमैला ढोने वाले को दिया जाना चाहिए या रोजगर देने वाले को । इस सम्बन्ध में स्पष्ट उदाहरण गीता रामा स्वामी देती हुई आती है उनका मानना है कि यह अधिनियम शौचालय सफाई रोजगार निषेध के साथ शुष्क शौचालय के निरन्तर प्रचलन या नये शौचालय बनाने के विरूद्ध और जल चालित शौचालय के निर्माण और उनसे जुड़े अन्य मामलों से सम्बन्धित है ऐसे में यदि विन्देश्वर पाठक द्वारा प्रस्तुत किया गया। सुलभ का व्यापार शुष्क शौचालयों के अलावा व्यवसाय का ऐसा विकल्प है जो अपने आप में इस कानून का उल्लंघन है।" भाषा सिंह का मानना है कि इससे अधिकारियों को यह बदमाशी करने की गुंजाइश मिल जाती है कि गरीब और लाचार मैला ढोने वालों को ही इस अधिनियम के तहत दण्ड दे दिया जाये, जो वास्तव में उन्हे रोजगार पर रखने वालो या शुष्क शौचालय बनाने वालों को दिया जाना चाहिए।

---

[17] भाषा सिंह, अदृश्य भारत मैला ढोने के बजबजात यथार्थ से मुठभेद पंगुइन बुक्स 2012
[18] इसका विस्तार से उल्लेख पीछे परिशिष्ट में उल्लेखित है (5 जून 1993 का कानून)

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि शुचिता का विचार सीधा-सरल नहीं है। इसे समझना हो तो किसी सफाई कर्मचारी से पूछे, जिसे हाथों से दूसरों का त्याग मल (Human Excreta) साफ करना पड़ता है। सवाल ये भी सोचने लायक है इतने सरकारी प्रयासों के बाद भी भारत आज तक मैला-प्रथा से मुक्त आज तक क्यों नहीं हो पाया है? इससे सम्बंधित कारण के रूप में बताया जा सकता है कि सरकारों द्वारा जब भी मैला साफ करने वालों से सम्बंधित आंकड़े सर्वे के माध्यम से प्राप्त किये जाते है। तब-तब उन आंकड़ों को कम दिखाकर सरकार द्वारा जिम्मेदारी से पल्ला झांड़ लेने की कवायत नजर आती है।

संदर्भ सूची

- भाषा सिंह (2012), अदृश्य भारत मैला ढोने के बचबचाते यथार्थ से मुठभेड़, पेंगुइन बुक्स इण्डिया, दिल्ली
- विन्देश्वर पाठक (1991), मुक्ति के मार्ग पर (भारत में गंदगी ढोने की प्रथा के उन्मूलन का समाजशास्त्रीय अध्ययन), मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, बंगलो रोड, दिल्ली
- बेजवाडा विल्सन (2010), भारत में मैला प्रथा उन्मूलन की रणनीति, सफाई कर्मचारी आन्दोलन, नई दिल्ली
- प्रेम कपाड़िया, डॉ. प्रकाश लुईस (सम्पा.), (2001) नई सदी को तोड़ नहीं पाई उत्तर प्रदेश में अढ़तपन को, भारतीय समाजिक संस्थान, नई दिल्ली
- डॉ. रणजीत (सम्पा.) (2013), जाति का जंजाल, मानवीय समाज प्रकाशन लोक भारतीय पुस्तक विक्रेता तथा वितरक, इलाहाबाद
- ओम प्रकाश वाल्मीकि (1999), जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
- रमेश वाल्मीकि (2001), उत्तर प्रदेश जहाँ आज भी मैला प्रथा जारी है, (सम्पा.), प्रेम कपाड़िया, भारतीय सामाजिक प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
- आशीष नंदी (2002), नयी राजनीतिक संस्कृति (सम्पा.) अभय कुमार दुबे, लोकतंत्र में सात अध्याय, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन

- दर्शन 'रत्न' रावण (2010), अम्बेडकर से विमुख सफाई कामगार समाज उपेक्षित, कारण और उचित, आंघस संवाद आदि धर्म समाज 'आघास' भारत नई दिल्ली।
- तक्लीन सिंह (2013), मौत्रालय बने चुनावी मुद्‌दा, जनसत्ता, 30 सितम्बर
- रमणिका गुप्ता (2013), (सम्पा.), मल मूल ढोता भारत: सृजन के आइने में यथा पब्लिकेशन्स, दिल्ली